धर्म महासभा : स्वागत का उत्तर

अमेरिकावासी बहनो तथा भाइयो !

आपने जिस सौहार्द और स्नेह के साथ हम लोगों का स्वागत किया है उसके प्रति आभार प्रकट करने के निमित्त खड़े होते समय मेरा हृदय अवर्णनीय हर्ष से पूर्ण हो रहा है। संसार में संन्यासियों की सबसे प्राचीन परंपरा की ओर से मैं आपको धन्यवाद देता हूं। धर्मों की माता की ओर से धन्यवाद देता हूं और सभी संप्रदायों एवं मतों के कोटि-कोटि हिन्दुओं की ओर से भी धन्यवाद देता हूं। मैं इस मंच पर से बोलने वाले उन कतिपय वक्ताओं के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूं जिन्होंने आपको यह बतलाया है कि सुदूर देशों के ये लोग सहिष्णुता का भाव विविध देशों में प्रचारित करने के गौरव का दावा कर सकते हैं। मैं एक ऐसे धर्म का अनुयायी होने में गर्व का अनुभव करता हूं जिसने संसार को सहिष्णुता तथा सार्वभौम स्वीकृत दोनों की ही शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते, वरन समस्त धर्मों को सच्चा मानकर स्वीकार करते हैं।

मुझे ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है जिसने इस पृथ्वी के समस्त धर्मों और देशों के उत्पीड़ितों और शरणार्थियों को आश्रय दिया है। मुझे आपको यह बतलाते हुए गर्व होता है कि हमने अपने वक्ष में उन यहूदियों के विशुद्धतम अवशिष्ट को स्थान दिया था जिन्होंने दक्षिण भारत आकर उसी वर्ष शरण ली थी जिस वर्ष उनका पवित्र मंदिर रोमन जाति के अत्याचार से धूल में मिला दिया गया था। ऐसे धर्म का अनुयायी होने में मैं गर्व का अनुभव करता हूं जिसने महान जरथुष्ट्र जाति के अवशिष्ट अंश को शरण दी और जिसका पालन वह अब तक कर रहा है।

भाइयो, मैं आप लोगों को एक स्तोत्र की कुछ पंक्तियां सुनाता हूं जिसकी आवृत्ति मैं बचपन से कर रहा हूं और जिसकी आवृत्ति प्रतिदिन लाखों मनुष्य किया करते हैं।

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

अर्थात् जैसे विभिन्न नदियां भिन्न-भिन्न स्रोतों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़े-मेढ़े अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें ही आकर मिल जाते हैं।

RESPONSE TO WELCOME

Sisters and Brothers of America,

It fills my heart with joy unspeakable to rise in response to the warm and cordial welcome which you have given us. I thank you in the name of the most ancient order of monks in the world; I thank you in the name of the mother of religions; and I thank you in the name of millions and millions of Hindu people of all classes and sects.

My thanks, also, to some of the speakers on this platform who, referring to the delegates from the Orient, have told you that these men from far-off nations may well claim the honour of bearing to different lands the idea of toleration. I am proud to belong to a religion which has taught the world both tolerance and universal acceptance. We believe not only in universal toleration, but we accept all religions as true. I am proud to belong to a nation which has sheltered the persecuted and the refugees of all religions and all nations of the earth. I am proud to tell you that we have gathered in our bosom the purest remnant of the Israelites, who came to Southern India and took refuge with us in the very year in which their holy temple was shattered to pieces by Roman tyranny. I am proud to belong to the religion which has sheltered and is still fostering the remnant of the grand Zoroastrian nation.

I will quote to you, brethren, a few lines from a hymn which I remember to have repeated from my earliest boyhood, which is every day repeated by millions of human beings:

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

"As the different streams having their sources in different places all mingle their water in the sea, so, O Lord, the different paths which men take through different tendencies, various though they appear, crooked or straight, all lead to Thee."